रिसते घाव

(पुस्तक के कुछ अंश)

और सलमा छोटी और क्वाँरी। वह मेरे साल-सवा साल के बच्चों को उठाए रहती और मुझसे कुछ बड़ी लगती। साथ ही मेरी शक्ल-सूरत और कद बिल्कुल अम्मी-जान की तरह था। हाय! अम्मी को तो नंजर लग गयी, नहीं तो वह अभी कहाँ मरने वाली थी।

सलमा ने मेरा लड़का उठाया हुआ थायही उसका आसरा था और इसी में वह व्यस्त रहती थी। अकेली औरत को लोग लावारिस माल समझते हैं। बच्चा कुछ भी न कर सकता हो पर माँ उसे आदमी से कम नहीं समझती। सलमा बिल्कुल हिन्दू औरत लगती। उसने बुरका नहीं पहना हुआ था और मैंने काले बुरके के पल्ले को सिर पर फेंका हुआ था। इससे मेरा मुँह और नक्श और भी सुन्दर लग रहे थे। सलमा की ओर कोई नहीं देखता था, पर जो भी मेरे पास से गुजर जाता वह एक बार फिर मुड़कर मेरी तरफ देखता। आगे............

और सलमा छोटी और क्वाँरी। वह मेरे साल-सवा साल के बच्चों को उठाए रहती और मुझसे कुछ बड़ी लगती। साथ ही मेरी शक्ल-सूरत और कद बिल्कुल अम्मी-जान की तरह था। हाय! अम्मी को तो नंजर लग गयी, नहीं तो वह अभी कहाँ मरने वाली थी।

सलमा ने मेरा लड़का उठाया हुआ थायही उसका आसरा था और इसी में वह व्यस्त रहती थी। अकेली औरत को लोग लावारिस माल समझते हैं। बच्चा कुछ भी न कर सकता हो पर माँ उसे आदमी से कम नहीं समझती। सलमा बिल्कुल हिन्दू औरत लगती। उसने बुरका नहीं पहना हुआ था और मैंने काले बुरके के पल्ले को सिर पर फेंका हुआ था। इससे मेरा मुँह और नक्श और भी सुन्दर लग रहे थे। सलमा की ओर कोई नहीं देखता था, पर जो भी मेरे पास से गुजर जाता वह एक बार फिर मुड़कर मेरी तरफ देखता।

मैं दुआएँ माँगती, रब आगे प्रार्थना करती कि हम दोनों सही-सलामत अब्बाजान के पास पहुँच जाएँ। मुद्दत बीत गयी थी अब्बाजान को देखे। वे कैसे होंगे। उनकी शक्ल बदल गयी होगी। वे अपनी साहिबंजादियों को पहचानेंगे भी या नहीं। हाय मेरा अल्लाह...।

हमारे दिल डर से भरे हुए थे, पता नहीं किस समय क्या हो जाए े जबकि अलीगढ़, दिल्ली, लखनऊ और हैदराबाद में हमारे घर थे। चाँदनी चौक में चाचा अब्बा की दुकान थी। जब भी कोई छोटी-मोटी छुट्टी होती, हम सब दिल्ली चले आते थे और चाचा अब्बा अपनी पर्दों वाली बग्घी भेज देते थे। वे पुराने खयालों के जो थे।

मुझे अच्छी तरह याद है जब मैं घर से चाचा अब्बा की दुकान पर आती तो सबसे पहले बाहर टँगा बड़ा-सा बोर्ड पढ़तीअनायत उल्लाह एंड सन्स। चाचा अब्बा मुझे देखते ही कुर्सी से हिल जाते। उन्हें ग्राहकों का खयाल नहीं रहता और कहतेमेरी बेटी नईम आ गयी हैं वे मुझे अपने पास बैठाते, प्यार करते और रुपया निकालकर कहतेमेरी बेटी नईमी क्या खाएगी, कुल्फी या फलूदा। यह देख मेरे साथ आया उनका बेटा अकरम नारांज हो जाता, पता नहीं क्यों? क्या पता था कि मैंने अकरम की ही बीवी बनना है। मैं सुन्दर थीचाँदनी रात की तरह और उसके मुँह पर चेचक के दाग थे। हाय अल्ला-तेरी रंजा...।

दिल्ली, लखनऊ, अलीगढ़ हमारे घर थे, अब सब पराये हो गये हैं। मुझे कोई आँखें बाँधकर भी छोड़ देता तो भी अब्बा की दुकान ढूँढ़ लेती। सुना है अब उस दुकान पर ओम बूट हाउस का बोर्ड लगा है। अब सारी दुनिया पराई लगती है। विलाप करने के सिवा और कोई कर भी क्या सकता है? छोड़ी हुई जगह भूलती भी तो नहीं। जब स्वप्न में वे स्थान आते हैं तो डर से रूह भी काँप जाती है। जैसे किसी अजींज की रूह मिल गयी हो।

मेरे अब्बाजान डॉक्टर असलम अलीगढ़ विश्वविद्यालय में प्रोंफेसर थे। पता नहीं हम पाँच भाई-बहन कैसे पैदा हो गये, हमने कभी अब्बाजान को अम्मीजान के साथ हँसते हुए नहीं देखा था। हर समय पढ़ाई, हर समय लिखाई। यदि कभी अम्मीजान कहती'खान साहिब चाय तैयार है', तब वे अम्मीजान की तरफ देख ऐसे 'हाँ' कहते जैसे ऊँघ रहे हों।

कई बार हमारी अम्मीजान को हँसी आ जाती और अधिकतर गुस्सा, और वह तमककर कहती"खान साहिब, नवाबजादी ने कुछ कहा है।"

"हाँ...हाँ..."

"क्या?"

"बेगम, आओ बैठो...मैं आपको कब से याद कर रहा हूँ।"

"छोड़ो भी, मैं हुई आपके घर की खरीदी हुई बाँदी। आंखिर मौत के दिन तो पूरे करने हुए..."

"बेंगम क्यों नारांज होती हो आंखिर..."

"आंखिरकार क्या मेरी ंजिन्दगी का भी कोई मकसद है। मैं जानवर तो नहीं हूँ। नवाब साहब ने मुझे कहाँ बाँध दिया। फरमाया करते थे'महिरो तेरा शौहर आलम आदमी है। बाप दादा से अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में प्रोफैसर और प्रिंसिपल रहे हैं। बड़ा ंखानदानी घर है।' पर नवाबंजादी को उन्होंने कसाई घर में भेज दिया। नवाबों की शहंजादी मदरसों के घर आ गयी।"

मेरी अम्मी अब्बाजान के पास खड़ी बातें करती ओर रोती जाती। वे उसकी सौ-सौ खुशामदें करते तो नवाबंजादी मुस्करा कर लाड से कहती"हुजूर को इस तरह तो नहीं करना चाहिए...।"

"हाँ...हाँ तुम ठीक कहती हो।"

जिस दिन अब्बाजान को ंफुरसत नहीं मिलती और वे अम्मीजान के साथ ठीक से बात नहीं करते उस दिन नवाबंजादी का पारा चढ़ जाता। कौन था फिर उनके सामने खड़ा होने वाला।

नवाबंजादी साहिबा ने तिल्ले वाला हैदराबादी कुर्ता पहना होता और गरारा पहन हुआ होता। कसे हुए कुर्ते से उसका शरीर फूट-फूट पड़ता, आँखों से ंखून उतर आता। मुँह एकदम लाल हो जाता और वह पुकारते हुए कहती"ओ शिब्बो, अरी शिबन, कहाँ मर गयी, अल्लाह रख्खा, ओ अल्लाह रख्खा, हरामंजादे, पता नहीं किधर चले जाते हैं। सूअरों को मार-मारकर अधमरा कर दूँगी।" वह हाथों में चाबुक उठा लेती ओर हवेली के लॉन में नवाबजादी ऐसे घूमती, जैसे पिंजरे में बन्द भूखा शेर घूमता है। डरता हुआ कोई सामने न आता। आखिर वह भी नवाबंजादी थी, नवाब बदरो दीन खान की इकलौती बेटी। हंटर मारकर नौकरों की चमड़ी उधेड़ देती। हुक्म अदूली की सजा इतनी ही नहीं, मौत भी हो सकती है।

सभी नौकर एक कोने में लग जाते। कोई भी सामने आने की हिम्मत न करता। सभी अल्ला रख्खा (हिजड़े) की खुशामद करते जो खुद को अल्लाह-रख्खा कहलवाकर खुश होता था। नवाब साहिब (नाना अब्बा) ने साहिबजादी के साथ अल्लाह रख्खा को दहेज में दिया था।

"ओ अल्लाह रख्खे के बच्चे कहाँ मर गया है, सूअर के बच्चे...।"

"हाय अल्लाह! नवाबजादी साहिबा इस तरह से क्यों कहती हो? मैं सदके जाऊँ, मैं मर जाऊँ खुदा कसम सारा बाजार रंडा हो जाएगा। सभी कहते हैं अल्लाह रख्खी मेरे साथ निकाह कर ले। कसम अपनी जान की"वह अपने सिर पर हाथ रखकर कहता"मुझे अलीगढ़ का एक आदमी भी पसन्द नहीं। कहाँ लखनऊ के नवाब और कहाँ यह घसियारे... ंखुदा कसम, नवाबंजादी साहिबा हजूर की ंखैर हो, मुझे अल्लाह रख्खा मत कहा करो। मैं तो अल्लाह रख्खी हँ,हजूर की बाँदी। उठाओ अपना चाबुक और उधेड़ दो चमड़ी...।मुझे लखनऊ छोड़ आओ...नवाब साहिब खुद किसी अच्छे साहिबंजादे के साथ मेरा निकाह कर देंगे...।हाय अल्लाह, मरूँ तो नवाबों के शहर, जहाँ मेरी कबर पर कोई आशिक आकर फूल चढ़ाये।"

अल्लाह रख्खी अम्मीजान की बलाएँ लेती। आँखों से आँसू बहते तो नवाबजादी का हाथ ढ़ीला पड़ जाता।

यह देखकर फिर अल्लाह रख्खी कहती"हाय अल्लाह, दो मिनट नईम बेटी के साथ क्या खेलने लगी कि मेरी आंफत आ गयी। हजूर बताओ, क्या हुक्म है...। नवाबंजादी साहिबा आपके बिना यहाँ मेरा कौन है?"

"नवाबंजादी की बच्ची...हरामंजादी...।"

"हाँ...हाँ नवाबंजादी की बच्ची!" अल्लाह रख्खी सिर हिला, आँखों में आँसू लाकर कहती और अम्मीजान के पैर पकड़ लेती। उन पर अपना सिर रख देती। अपनी चुनरी से अम्मीजान के पैर झाड़ती।

नवाबंजादी को चुप खड़ा देख डरते-डरते शिब्बो और बाकी के नौकर भी आ जाते और हाथ जोड़कर माफी माँगते। अल्लाह रख्खी का ड्रामा घर में फिर चहल-पहल ले आता।

मैं बता रही थी कि मेरी अम्मी पाँच बच्चों की माँ होते हुए भी बहुत सुन्दर थी। अब्बा हजूर की ंजरा-सी नारांजगी घर में कयामत ले आती थी।

अम्मीजान को याद कोई बेगम साहिबा कह देता तो वह गले पड़ जाती थी। अम्मीजान को अपने मायके पर अभिमान था। वह नवाब बदरो दीन खान की साहिबंजादी और नवाबंजादी थी।

नवाब बदरो दीन खान की क्या बातें थीं। उन्हें दोनों बेटों से बेटी ज्यादा प्यारी थी। जब हमने लखनऊ जाना होता तो अम्मीजान तीन-तीन हफ्ते पहले से तैयार करती, उधर नवाब साहिब नौकरों को आदेश देते"याद रखो, नवाबंजादी तशरींफ ला रही है। उसकी खातिर में कमी नहीं आनी चाहिए।"

"कल्लन...?"

"जी हजूर।"

"काले साँसी को मेरी तरफ से हुक्म देना, नवाब हजूर ने याद ंफरमाया है। जंगली तीतरों का इन्तंजाम कर ले। नवाबंजादी तशरींफ ला रही है।"

"कल्लू को हुक्म दो कि हर दूसरे दिन दो दर्जन बटेर लाये।"

"हाँ...हाँ एक और बात सुनो, सारे काम भूल मत जाना। सरदार जाफर को कहना नवाबंजादी आ रही है। मुर्गाबिए जरूर भिजवा दे, एक-आध हिरन,जंगली मुर्गे मिल जाएँ तो बहुत अच्छा है।"

नवाब साहिब को पचास रुपये वजीफा मिलता, पर उनके शुगल बहुत थे। लाखों की जमीन इन शुगलों में ही जा रही थी।

दीवानखाने के बाहर लॉन में लम्बे बेंच पर हर समय दो-चार आदमी बैठे ही रहते।

"कल्लन खान, नवाब हजूर को हमारा सलाम देना। कहना फज्जू पहलवान खिदमत में हाजिर हुआ है।"

"काम।"

"काम बहुत जरूरी है। मेरा पट्ठा तैयार है। वह हसनखान के बटेर के साथ लड़ेगा। खुदा कसम कल्लन, बटेर क्या है, शहजादा है। उसका एक पंजा भी कोई नहीं सहार सकता। बहुत खूँख्वार है। दाने की जगह किशमिश और सोने के वर्क खिलाये हैं उसे, बादाम और आँवले का मुरब्बा।। दिल देख जवान का...।"

"पहलवान, आजकल नवाब हजूर को फुर्सत नहीं। नवाबंजादी साहिबा तशरींफ लाने वाली हैं।"

"दोस्त, हमारा सलाम तो दो नवाब साहिब को, इन रुस्तमों की लड़ाई देखने के लिए अब लखनऊ में रह भी कितने आदमी गये हैं...।"

मुझे अब भी याद है लखनऊ पहुँचने से एक हंफ्ता बाद फज्जू पहलवान के बटेर की लड़ाई हुई। मैं उस समय बहुत छोटी थी, पर अब तक मुझे सारी बातें याद हैं।

दीवान-ए-आम के बाहर लॉन में इसी काम के लिए एक तख्तपोश पड़ा हुआ था। उसके साथ उतने ही ऊँचे दीवान पर काली पड़ा था। मसनद लगाकर नाना अब्बा आकर बैठ गये थे। हुक्के की गोल नली उनके हाथ में थी और हुक्का दीवान से कुछ हटकर एक तिपाई पर सजाकर रखा गया था। मैं नाना अब्बा हजूर के कालीन पर बैठी थी। एक-दो और नाना अब्बा की उम्र के नवाब बैठे पुरानी बातें कर रहेथे।

सामने मेज पर सफेद चादर बिछी थी, जिस पर लड़ाई होनी थी और उसके चारों तरफ दोनों पार्टियों के लोग बैठे हुक्म की प्रतीक्षा कर रहे थे।

"हजूर, हुक्म हो तो दंगल शुरू हो!" फज्जू पहलवान ने उठकर फर्शी सलाम करते हुए कहा।

"हुक्म है, कोई आदमी शोर-शराबा मत करे।" नाना अब्बा ने हुक्के की नली उँगलियों में थामते हुए कहा।

बिछी हुई चादर पर थोड़े से दाने बिखेरे गये, और दोनों धड़ों के बीच एक और चादर तान दी गयी।

"कोई आदमी हल्ला-गुल्ला नहीं करे, नहीं तो दंगल बन्द कर दिया जाएगा ओर लोगों को बाहर निकाल दिया जाएगा। कल्लन...

"बीच की चादर ध्यान से खींचना कोई पट्ठा डर नहीं जाएे। हमसे बेइन्साफी नहीं हो सकती।"

"जी सरकार।"

चादर खींचने से पहले बटेरों को छोड़ा गया। उन्होंने एक-आध दाना-चुगने के बाद पंख फड़फड़ाये और चादर खींच ली गयी।

मैं क्या बताऊँ नाना अब्बा के शुगल? वे मुनसफ आदमी थे, भेड़ों की लड़ाई के, मुर्गों की लड़ाई के, बारहसिंगे भी लड़ाए जाते थे। बटेरबाज से लेकर कबूतर-बाज तक सभी नवाब अब्बा के हजूर में सलाम करने आते। चाय-शर्बत चलते रहते, पर क्या मजाल कोई नाना अब्बा के हुक्के को हाथ भी लगा जाएे।

इन कामों में नाना अब्बा ने लाखों की जायदाद गँवा दी थी, पर दरवांजे से मेहमान भूखा नहीं जाने देते थे।

मेरे अब्बाजान डॉक्टर असलम साहिब को नाना अब्बा के साथ बहुत चिढ़ थी। पर मेरी माँ अपने अब्बाजान पर फख्र करती थी। वह नवाबंजादी जो थी। पर अभी नवाबंजादी को दु:ख के दिन देखने बाकी थे।

अलीगढ़ वाली हवेली भी एक केन्द्र (मरकज) बन गयी। जो भी आता यही पूछता"डॉक्टर साहिब कहाँ हैं...।"

"काम।"

"काम उन्हीं के साथ है।"

नवाबंजादी इतने ंफजूल आदमियों की आवभगत से खीझ जाती और पूछती"खान साहिब ये कौन लोग हैं...?"

"बेंगम, हर बात औरतों को बताने वाली नहीं होती, तुम अपना काम कियाकरो।"

हमारी अम्मी को बहुत गुस्सा आता, पर उसकी पेश नहीं चलती थी।

हमारे घर में मीटिंगें होतीं, खुंफिया आदमी आते, पर पता कुछ नहीं लगता।

रावलपिंडी जल रहा है, लाहौर आग लगी हुई है। हिन्दू-सिख घर छोड़-छोड़कर भाग रहे हैं। मुसलमानों के दुश्मन बस सिख हैं सिख। इन पर काबू पा लिया तो सारा पंजाब हाथ में आ जाएगा। जैसे-जैसे ये खबरें आतीं, अब्बाजान के मुँह पर निखार आ जाता। उन्होंने अपनी हवेली के आसपास ही नहीं, मुहल्ले के आसपास भी किला-बन्दी करवा दी।

जालन्धर, लुधियाना, अमृतसर सभी सिखों ने उजाड़ दिये, बुर्के फाड़ दिये गये। स्त्रियों का स्त्रीत्व नष्ट कर दिया गया...हाय...हाय... छातियाँ काट दी गयीं...नंगे जुलूस...तौबा तौबा।

मेरे अब्बा के माथे पर पसीना आ गया और उन्होंने हवेली की खिड़की में खड़े होकर विश्वविद्यालय की बड़ी-बड़ी मीनारों को देखकर एक लम्बा साँस लिया।

एक खबर आयी दिल्ली में गड़बड़ हो गयी है। पहाड़गंज, चाँदनी चौक सभी को साफ कर दिया गया है। यह सुन अब्बाजान को महसूस हुआ कि उनकी सारी स्कीमें फेल हो गयी हैं। उन्होंने अपनी ंकब्र को अपने हाथों खोदा है।

अम्मीजान को अपना शृंगार भूल गया और वह भागकर अब्बाजान के गले लगकर रोने लगी।

"हजूर को यह क्या होता जा रहा है। आप बोलते क्यों नहीं। लड़कियाँ जवान हैं, लड़के जवान हैं। सुना है, लाहौर की तरफ से आये सिख मुसलमानों की लड़कियों को नहीं छोड़ते, लड़कों को झटका देते हैं। किसी की कोई पेश नहीं जा रही। यह वहशी कौम कहाँ से आ गयी।"

अब्बाजान चुप थे, बिल्कुल चुप। उनके माथे पर पसीना आ रहा था। सभी बच्चे उनके आसपास बैठे थे। अल्लाह रख्खी एक कोने में बैठी रो रही थी। शिबन पता नहीं कहाँ चली गयी थी।
घर ंकब्रिस्तान बन गया था।

नौकर ने चाय तैयार की। वह पड़ी-पड़ी ठंडी हो गयी। सुबह का खाना भी पड़ा हुआ था। ऐसा लग रहा था कि जैसे रात होते ही घर में डाका पड़ गया हो। इतने में अल्लाह रख्खी दौड़ी-दौड़ी अन्दर आयी"हजूर की ंखैर हो, दिल्ली से एक आदमी आया है। वह जनाब को मिलना चाहता है। कहता है, काम हजूर को ही बताएगा।"

"उसे अन्दर जे आओ।"

जो आदमी अन्दर आया, उसे हम सभी जानते थे। आदमी चाचा अब्बा का विश्वासपात्र नौकर था। ऐसा लग रहा था कि वह जान पर खेलकर हम तक पहुँचा था। उसने अब्बा हजूर को सलाम करते हुए कहा"खान साहिब ने यह चिट्ठी दी है। मुझे जल्दी वापस जाना है। दिल्ली वाले अपनी जान बचाकर कसमपुरसी की हालत में हुमायूँ के मकबरे में पनाह ले रहे हैं।"

चिट्ठी में लिखा था नवाबंजादी साहिबा और बच्चों को लेकर जल्दी पहुँच जाओ। हमारा कांफिला कराची जाने वाला है। बच्चे हवाई जहाज में पहुँच चुके हैं। दिल्ली बरबाद हो गयी है।

सिख क्या, मुसलमान मुसलमान को खा रहा है। रिश्वत बहुत चल रही है। कराची पहुँचने के लिए हवाई जहाज का इन्तंजाम कर लिया गया है। आदमी चला गया तो हमारे घर मातम छा गया।

अब्बाजान का दिमाग अनेक प्रकार के विचारों से भर गया था। वे चुप थे, जैसे सकता मार गया हो। हम बेघर हो चले थे, जलावतन किये जा रहे थे। सिख मुसलमानों के मुकाबले पर...छातियाँ काट दी गयीं, बुकर्ें फाड़ दिये गये। कतारों में नंगी खड़ी की गयी मेरी साहिबंजादियाँ, मेरी बेंगम, यह सब मेरे अमालनामे हैं, अब्बाजान हवेली की खिड़की में खड़े बाहर की ओर देख रहे थे। उन्हें ऐसा महसूस हो रहा था जैसे यूनिवर्सिटी की एक मीनार अपने आप गिर गयी हो। फिर उनकी निगाह यूनिवर्सिटी के प्रांगण में गयी! जहाँ सर सैयद अहमद खान के मंजार से कुछ हटकर उनके दादाजान और अब्बा साहिब की ंकब्रें थीं।

उन्हें लगा कब्रों में से मिट्टी उड़ रही है। उस मिट्टी ने अनेक व्यक्तित्वों का रूप धारण कर लिया। अब्बाजान ने इन शख्सियतों के बारे में हमें कराची में भी पत्र डाला था और लिखा थामैं बाप-दादा की ंजमीन से अलग नहीं हो सकता। पता नहीं इन रूहों ने अब्बा हजूर से क्या बातें की थी...फिर खिड़की से अपना मुँह घुमा उन्होंने हुक्म दिया"सभी तैयार हो जाओ, बुर्के उतार देना, कोई मुसल्ला या लाटा न उठाये। अलीगढ़ से हमें चोरों की तरह निकलना होगा।"

"बसीर!"

"जी हजूर...।"

"तुम मोटर तैयार करो, बेंगम, साहिबजादियों और लड़कों को लेकर तुम भाई साहिब के पास दिल्ली पहुँचो। रास्ते में नहीं ठहरना। रात को वापस पहुँचना होगा। मैं तेरी इन्तजार करूँगा। शाबास, मेरे बहादुर बच्चे..."

"और हजूर।" नवाबजादी ने तरले से भरी आवांज में कहा।

"मैं भी पहुँचूगा।"

"मैं हजूर के बिना नहीं जा सकती।"

"देखो बेगम, इन बीस वर्षों में मैंने आपको कभी कोई हुक्म नहीं दिया। आज डॉक्टर आलम हुक्म दे रहा है, तुम तैयार हो जाओ, जिद नहीं करो। यह रुपये सम्भालो आपके काम आएँगे।"

नवाबजादी ने घुटनों के बल खड़े होकर, अब्बा हजूर का हाथ चूमा और आँसू बहाते हुए कहा"मेरे आंका! बाँदी को धोखा मत देना। यह नवाबजादी नहीं,फकीरजादी दरंखास्त करती है। हजूर बिना मैं जिन्दा नहीं रह सकती। मुझे अपने हाथों से मार दो, कौन है जनाब को पूछने वाला।" माँ की इन बातों ने सभी को रुला दिया।

"बेगम उठ।" अब्बा ने नवाबजादी को दोनों कन्धों से पकड़कर उठाया और हमारे सामने ही उन्हें गले लगा लिया, मेरी अम्मा का माथा चूम लिया। पता नहीं इस चुंबन में कितनी तल्खी और कितने सकून थे।

हमाने दिल्ली से अम्माजान को कितनी ही चिट्ठियाँ डालीं। कितने पैगाम भेजे, पर वे नहीं आये। और न ही कोई जवाब आया। दिल्ली से जाते समय मेरी अम्मी फूट-फूटकर रोयी। महबूब इलाही के मंजार शरींफ की तरफ मुँह करके उन्होंने अपने शौहर के लिए दुआ माँगीसौ-सौ संजदे किये और दिल्ली की खाक को सिर पर लगा रोते हुए कहा"नवाबंजादी ंफकीरंजादी हो गयी है, है ंखुदा!"

कराची पहुँचते ही हमें अच्छा मकान मिल गया। भाई असगर की कॉलेज में नौकरी लग गयी। हम सभी पाठशाला जाने लगे। हम उदास थे, पर खुश भी। अब हमें कोई सिख नहीं सता सकता था। सिखों की भयानक बातें सुन, कई बार मैं सोते-सोते चीखने लगती थी। अम्मीजान सुबह नमांज पढ़ती तो दुआ करती। उसकी आँखों से आँसू बहने लगते"या अल्लाह! मेरे डाक्टर साहब की खैर हो। मेरा सुहाग कायम रहे।"

अम्मी ने खाना-पीना छोड़ दिया। कुछ महीनों में ही कनपटियों पर उनके बाल सफेद हो गये। वह हर हफ्ते अब्बाजान को खत लिखती, तार डलवाती, पर कोई जवाब नहीं मिला। अम्मीजान पागल-सी विलाप करती। कपड़े फाड़ देती और भिखमंगों की तरह हाथ फैला-फैलाकर डाक्टर असलम की ंखैरियत के लिए दुआ माँगती। कितनी बार अब्बा हजूर को लिखा था"डाक्टर साहिब! ंखुदा के दरवांजे सदा खुले हुए हैं। मैं हशर के दिन हजूर का दामन पकड़ पुलसरात की कठिन घाटी आँखें मींचकर पार कर जाऊँगी। मेरा रहबर मेरे साथ होगा। क्या मेरी जिन्दगी में हजूर के न्याज हासिल नहीं हो सकते? मैं हजूर की बाँदी हूँ। मेरे दफनाए जाने से पहले एक बार मेरे महबूब मुझे देख जाते और अपने हाथ से मेरी कब्र पर पत्थर लगवा जाते। नवाबंजादी महिरुल निसा जोंजा डाक्टर असलम आराम फरमा रही है। नहीं तो कयामत के दिन पूछूँगी। मेरा क्या दोष था, मुझे इतनी बड़ी सजा क्यों दी।"

हमसे माँ का दु:ख देखा नहीं जाता था। मामा साहिब आते। वे डाक्टर थे। अपनी बहन को तसल्ली देते। उनका एक भाई अभी तक हैदराबाद में था। नाना अब्बा लखनऊ से नहीं निकल सकते थे और कुछ वर्ष पहले वहीं वफात पा गये थे। उनके पास अपना कोई अजींज नहीं था।

आदमी को मिट्टी से कितनी मुहब्बत होती है, वह मर सकता है, पर उस का मिट्टी से प्यार नहीं टूट सकता। नानाजान ने वह सरंजमीन नहीं छोड़ी, पर मौत कबूल कर ली।

नानाजान ने एक बार हमारी माँ अर्थात् नवाबजादी को लिखा था"महरो, जब कभी लखनऊ आओ, मेरे मंजार पर अपने हाथ से अगरबत्ती जलाना। मैं अकेला रह गया हूँ। मेरे साथ सिर्फ कल्लन है। कभी-कभी अमीनाबाद के चौक में जाकर खड़ा हो जाता हूँ। अपना कोई भी नजर नहीं आता। महिरो, तुम्हारी मुहब्बत मेरे दिल में बसी हुई है। पर जब मेरी साँस से लखनऊ की मिट्टी की महक आती है, मेरी आँखें मुँद जाती हैं। मेरी जमीन सरकार ने सम्भाल ली है। मेरे लिए हवेली का सामान काफी है। कोई शुगल नहीं, आंखिरी दिन की इन्तंजार है। मैं जफर की तरह रोना नहीं चाहता'दो गज जमीन भी न मिली कू-ए-यार में।'

मौत के बाद भी मुझे कोई इस जमीन से अलग नहीं कर सकता। तुझे मिलने की एक तड़प बाकी है।

अब्बाजान बिलकुल चुप हो गये थे। पर माँ को नाना अब्बा के खतों से मालूम चल गया था कि डाक्टर असलम क्यों नहीं आ रहे।

मुसलमान मूर्तिपूजक नहीं होता। मेरी अम्मी मूर्तिपूजक हो गयी। यह उसकी मुहब्बत की बहिशत का नतीजा था। पता नहीं किसने अलीगढ़ विश्वविद्यालय की पत्रिका उन्हें दी, जिसमें डाक्टर अब्बा की तस्वीर थी। वे रंगीन गाउन और चौड़ी टोपी पहन कन्वोकेशन के जुलूस में जा रहे थे। नीचे लिखा था डाक्टर एम।असलम, वाइस चाँसलर।

अब्बाजान की ठोढ़ी पर की छोटी-सी दाढ़ी बिल्कुल सफेद हो चुकी थी। जब अम्मी ने तस्वीर देखी तो फूट-फूटकर रोने लगी। उसको दंदल पड़ गयी। मामाजान आये हुए थे। नवाबजादी की हालत देख उनकी आँखों में भी आँसू आ गये। डाक्टर भाई साहिब और प्रोफेसर भाई साहिब तथा हम तीनों बहनें पास थे। डाक्टर भाई साहिब माँ को होश में लाने की कोशिश कर रहे थे तथा साथ खुद भी रोते जा रहे थेया अल्लाह फजल करो।

अम्मीजान ने अब्बाजान की तस्वीर को शीशे में जड़वाकर मेज पर रख लिया। मेज मगरब की तरफ थी। अम्मीजान नमाज पढ़ जब सिंजदा करती तो डाक्टर अब्बा की तस्वीर सामने होती। ऐसा लगता कि जैसे वे अपने देवता को सिजदा कर रही हो। अम्मा कई-कई घंटे मुसल्ले से न उठती। वह अपने महबूब से बातें करती रहती। कई बार हम चुपचाप उसके पीछे खड़े हो जाते पर उसको इसकी कोई खबर न होती।

घर में सब कुछ था। मेरा विवाह चाचा अब्बा के घर हो चुका था। सलमा एम।ए। कर चुकी थी। और अब्बाजान की यादें धुँधली पड़ती जा रही थीं, पर अम्मा का घाव वैसे ही रिस रहा था। उसमें अब प्राण नंजर नहीं आ रहे थे।

वह तरले करती कि अलीगढ़ जाए, वह मिन्नतें करतें कि लखनऊ जाकर देखे, हैदराबाद जाकर बड़े भाई साहिब को मिले। पर मेरे दोनों भाई साहब उन्हें जाने नहीं देतें थे। उन्हें हिन्दुस्तान से चिढ़

थी और ंखासकर सिखों से। 'अलीगढ़ में फिर फसाद हो गये हैं। यह सिख कितनी घटिया कौम है, औरतों का भी लिहांज नहीं करते। अम्मीजान आप बहुत कमंजोर हो गयी हैं।' मेरी अम्मी अलीगढ़ की मिट्टी के लिए तरसती हुई चल बसी।

एक दिन अम्मी ने मुझे अपने घर बुलाकर कहा था"नईम बेटी, तुम अब समझदार हो गयी हो, बहादुर भी। मेरा आखिरी समय आ गया है। एक बार अलीगढ़ जाना और डाक्टर साहब को मेरा सलाम देना। और कहना, हजूर मेरी अम्मी को मांफ कर देना, वह बड़ी गुनाहगार थी, मेरे लिए दुआ करें और महशिर वाले दिन मेरा हाथ पकड़ लें।"

अम्मी चिल बसी, पर अब्बाजान की तरफ से कोई खत नहीं आया। हम दोनों बहिनें हिन्दुस्तान जाने के लिए तैयार हो गयी थीं। माँ की बातें हमारे कानों में गूँज रही थीं। फिर कौन रोक सकता था?

मैं पहले ही बता चुकी हूँ कि मैं बड़ी थी, पर सलमा से छोटी लगती थी। वह विवाहिता और मैं क्वाँरी लगती। साथ में उसने मेरा बच्चा जो उठाया हुआ था। वह बिना बुरके की और मैं बुरकेवाली। हमने सीमा पार की। हमारा रंग पीला पड़ गया। मोटे-मोटे सिख, बड़ी-बड़ी पगड़ियों और बिखरी हुई दाढ़ी वाले...जिन्न...अल्लाह तेरा फंजल। हम दिल्ली पहुँचीं...हमारी साँस-में साँस आयी। दिल्ली स्टेशन उसी तरह था जैसे आज से चौबीस साल पहले था। कुछ मुसलमानों की शक्लें नंजर आयीं तो हमारी साँस-में-साँस आयी। मैंने लम्बी साँस लेते हुए सलमा की तरफ मुँह करते हुए कहा

"अभी तक वो गलियाँ हसीनो-जवाँ हैं

जहाँ हमने अपनी जवानी लुटा दी।"

सलमा यह सुनकर मुस्करा पड़ी। उसकी मुस्कराहट में ंजहर घुला हुआ था। उसने कहा"हम तो ऐसे नहीं।

अभी तक वो गलियाँ हसीनो-जवाँ हैं

जहाँ हमने अपने है बचपन को खोया।"

हम बहुत खुश थे कि अलीगढ़ के स्टेशन पर अब्बा हजूर हमें लेने के लिए आये होंगे। पर वे कहीं नंजर नहीं आये। हमारे पास आकर एक बूढ़े-से मुसलमान ने पूछा"बेटी नईम है।"

"हाँ...हाँ...।"

और वह रोता हुआ हमारे सिरों पर हाथ फेरता रहा "बिस्मिल्लाह! बिस्मिल्लाह! मेरी बेटियाँ आ गयी हैं।" यह हमारा पुराना नौकर बसीर था जो अब काफी बूढ़ा हो चुका था।

"खान साहब आपका इन्तंजार कर रहे हैं। वे स्टेशन पर नहीं आ सकते।"

हम बहुत खुश थीं। वर्षों बाद अपने घर आयी थीं। अब्बा हजूर अन्दर थे और हमारा मन कर रहा था कि दौड़कर जाएँ और उन्हें बाँहों में ले लें। हम अन्दर गयीं तो डर गयीं, हमारे रंग पीले पड़ गये। अब्बा हजूर के बिलकुल पास एक सिख खड़ा था और उसके साथ एक सुन्दर लड़की। अब्बा हजूर ने हमें कसकर गले से लगा लिया और सरदार की तरफ इशारा करते हुए कहा"मेरे मुहाफज और अपने भाई साहब जोगिन्दर सिंह से मिलो।" हम हिल न सकीं। पर सरदार जी ने हमारे सिरों पर प्यार दिया और उनको पासा खड़ी उनकी बीवी ने हम दोनों बहनों को गले लगाते हुए कहा"हम कितने दिनों से आपका इन्तजार कर रहे थे। आओ मेरे बेटे अपनी मामी के पास।" मेरे बेटे को उठाते हुए उसने कहा।